एस. सत्यमूर्ति

के. आर. वैद्यनाथन

"लोग स्वतंत्रता प्राप्त करने का संकल्प एक बार कर लें तो फिर दुनिया की कोई ताकत उनके मार्ग की बाधा नहीं बन सकती।"

एस. सत्यमूर्ति

एस. सत्यमूर्ति

सन् 1910 की बात है। 23 साल के एक नवयुवक ने इंपीरियल लीग द्वारा आयोजित एक प्रतियोगिता के लिए निबंध लिखा। निबंध का विषय था 'ब्रिटिश राज के प्रति निष्ठा'। निबंध के लिए उसे स्वर्ण-पदक मिला। पुरस्कार के लिए उसने ब्रिटिश शासकों की कोई चापलूसी नहीं की थी। इसके बजाय उसने यह तर्क दिया कि वफादारी दुतरफा मामला है जिसमें 'इस हाथ दे उस हाथ ले' वाली बात होती है। इस तरह उसने छोटी उम्र में ही अपनी तर्कशक्ति का परिचय दे दिया।

इस नवयुवक नाम था—एस. सत्यमूर्ति, जिन्होंने आगे चलकर ब्रिटिश राज का खुलकर विरोध किया। इस जोशीले वक्ता, विवादी तथा प्रतिभाशाली सांसद के बारे में महात्मा गांधी ने एक बार कहा था, "असेंबली में एक सत्यमूर्ति की उपस्थिति ही पर्याप्त हैं और कहीं दस सत्यमूर्ति होते तो अंगरेज यहां से बहुत पहले कूच कर गए होते।"

अचरज की बात यह है कि पुरस्कार जीतने वाले यही सत्यमूर्ति 7 वर्ष पहले सन् 1903 में अपनी मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सके थे। उस समय वे 16 वर्ष के थे। परंतु यह विफलता उनके लिए सफलता की सीढ़ी सिद्ध हुई। अगले वर्ष सत्यमूर्ति ने अच्छे अंकों से परीक्षा उत्तीर्ण की तथा उसके बाद कॉलेज की शिक्षा पूरी की। उन्होंने सन् 1906 में बी.ए. पाठ्यक्रम के लिए मद्रास (अब चेन्नई) क्रिश्चियन कॉलेज में दाखिला लिया। वे कॉलेज के सबसे प्रतिभावान छात्रों में से एक थे। उन्होंने अंगरेजी में प्रथम श्रेणी तथा संस्कृत एवं इतिहास में उच्च द्वितीय श्रेणी हासिल की।

बी.ए. करने के बाद वे लॉ कॉलेज में भरती हो गए। यहां भी उन्होंने विशेष योग्यता के साथ परीक्षा उत्तीर्ण की। लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल तो उन्हें उसी कॉलेज में प्राध्यापक बनाना चाहते थे, परंतु एस. सत्यमूर्ति ने कक्षा की चारदीवारी में बंद रहने के बजाय व्यापक क्षेत्र में काम करना पसंद किया।

सन् 1913 में उन्होंने उच्च न्यायालय में वकील के रूप में काम करना शुरू किया। उसी दौरान वे कांग्रेस के अग्रणी नेता तथा प्रमुख वकील एस. श्रीनिवास आयंगार के संपर्क में आए। वे सत्यमूर्ति की वाक्पटुता तथा वाद-विवाद क्षमता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उन्हें राजनीति में लाने का फैसला कर लिया। सन् 1915 के आसपास सत्यमूर्ति ने वकालत छोड़ दी और अपना पूरा समय राजनीति तथा सार्वजनिक कामों में लगाने लगे। उसके बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

तीन भविष्यवाणियां

तमिलनाडु में पुडुकोहई प्रदेश के तिरूपय्यम गांव में 19 अगस्त, 1887 को सत्यमूर्ति के जन्म के तत्काल बाद उनके पिता ने जो शौकिया ज्योतिषी थे, बच्चे की कुंडली का अध्ययन करके तीन भविष्यवाणियां की। वह प्रसिद्ध वक्ता बनेगा, उसका यश 'समुद्र पार' तक फैलेगा और वह अपने पिता का श्राद्ध गया में करेगा। ये तीनों भविष्यवाणियां सत्य सिद्ध हुईं।

जब सत्यमूर्ति नौ वर्ष के थे तब उनके परंपरावादी ब्राह्मण, विद्वान तथा वकील पिता सुंदर शास्त्रियार की मृत्यु हो गई। वे अपने पीछे पत्नी, बच्चों तथा बूढ़े माता-पिता को छोड़ गए। सत्यमूर्ति पांच बेटों में सबसे बड़े थे। वे कुल मिलाकर नौ भाई बहन थे। परिवार की देखभाल का दायित्व उन पर तथा उनकी मां पर आ पड़ा।

पूरी मेहनत से अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए भी उन्होंने अपने देश में होने वाली घटनाओं को भुलाए नहीं रखा। उन्होंने कॉलेज में अपनी

विकासात्मक भावनाओं और संवेदनशीलता से युक्त बीते वर्षों के बारे में चर्चा करते हुए लिखा, "हमारा समय बहुत उत्तेजनाजनक था। विपिनचंद्र पाल मद्रास आए और हम अत्यंत उत्तेजित हो उठे। हमने उनके सारे व्याख्यान सुने। लाला लाजपत राय को देश निकाला दिया गया तो हमने कक्षाओं का बहिष्कार किया।"

उत्तेजनाजनक घटनाएं

जब वे पुडुकोटई में स्नातक पूर्व के पाठयक्रम की पढ़ाई कर रहे थे तभी ऐसी कई घटनाएं हुई जिनसे प्रभावित होकर सत्यमूर्ति जैसे नौजवान सार्वजनिक जीवन में रुचि लेने लगे। 16 अक्टूबर, 1905 को हुए बंगाल के विभाजन से सारे देश में आक्रोश फैल गया। हिंदुओं तथा मुसलमानों ने इसमें अंगरेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को व्यवहार में आते देखा और इसका डटकर विरोध किया। युवा सत्यमूर्ति चुप नहीं बैठ सके। उन्होंने अंगरेजों के अत्याचारों का विरोध करने के लिए छात्रों की एक सभा आयोजित की।

बंग-भंग से इंग्लैंड की वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेशी आंदोलन का सूत्रपात हुआ। सभी वर्गों के लोगों ने अपने-अपने ढंग से इस आंदोलन में भाग लिया। जाने-माने इतिहासकार डॉ. आर.सी. मजूमदार ने लिखा, "मैमनसिंह में मोचियों ने अंगरेजों के जूते गांठने से इनकार कर दिया। उड़िया रसोइयों तथा नौकरों ने एलान कर दिया कि वे विदेशी चीजों का इस्तेमाल करने वाले अपने मालिकों की सेवा नहीं करेंगे। काली के धोबियों ने विदेशी कपड़ों की धुलाई का बहिष्कार करने का प्रस्ताव पारित किया। छह साल की एक बच्ची ने बहुत बीमार होने पर भी विदेशी दवा लेने से इनकार कर दिया। छात्रों ने उस आधार पर परीक्षाओं में बैठने से मना कर दिया क्योंकि उत्तर पुस्तिकाएं विदेशी कागज से बनी थीं।"

बीसवीं शती के पहले दशक में भारत में रेल सेवाओं की शुरूआत हुई। इसके तथा डाक-तार प्रणाली के मुख्य केंद्रों के बीच संपर्क जुड़

गया। संचार व्यवस्था की इस प्रगति के फलस्वरूप देश भर में समाचारपत्रों का विकास हुआ जिससे शिक्षित लोगों में उत्तेजना आने लगी।

अंगरेजी शिक्षा लागू होने तथा 19वीं शताब्दी के उदारवादी दार्शनिकों के विचारों के प्रभाव से भारत ने मध्य युग से निकलकर आधुनिक युग में कदम रखा। आधुनिक भारत के पुनर्जागरण से देश को गहरी नींद से जगाने में मदद मिली। इससे जागरण का ऐसा सिलसिला चला जिसने हमारे राष्ट्रीय जीवन के सभी पहलुओं—धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और सबसे अधिक राजनीतिक, को प्रभावित किया। जैसा कि डॉ. मजमूदार ने लिखा है, "अंगरेजी शिक्षा ने उन बाधाओं को समाप्त कर दिया जो अब तक भारत को बाहरी दुनिया से अलग किए हुए थीं और भारत में विचारों की जैसे बाढ़ सी आ गई।

अंगरेजी शिक्षा ने संभ्रांत वर्ग को जागृत किया तो आम लोगों में लोकप्रिय गीतों तथा गाथाओं के जरिए जागृति पैदा हुई। लाला लाजपत राय की गिरफ्तारी तथा बाल गंगाधर तिलक के मुकदमे और सजा जैसी सनसनीखेज घटनाओं का गीतों के माध्यम से मार्मिक बखान किया गया जिससे लोगों में जागृति आई।

इस प्रसंग में यह भी दिलचस्प बात है कि सन् 1905 में गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में बनारस में हुए कांग्रेस अधिवेशन में हमारा राष्ट्रीय गीत 'जन गण मन' स्वयं इसके रचयिता रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा गाया गया था।

गांधीजी का प्रभाव

कांग्रेस के इतिहास की जिस सबसे महत्वपूर्ण घटना ने युवकों को प्रेरित किया वह थी सन् 1919 में अनुपम नेता के रूप में महात्मा गांधी का उदय। उसी साल जलियांवाला बाग में नरसंहार हुआ था, जिसमें पंजाब के देशभक्तों ने पहली बार ऐसा रक्तपात देखा था।

सन् 1920 का वर्ष भी बहुत महत्वपूर्ण था, जब कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन हुआ। सी. विजयराघवचारियर की अध्यक्षता में हुए इस

अधिवेशन में व्यापक स्तर पर अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन और महत्वपूर्ण झंडा सत्याग्रह का जन्म हुआ।

अपनी पीढ़ी के अन्य युवकों की तरह सत्यमूर्ति ने भी महात्मा गांधी के प्रति जबरदस्त आकर्षण महसूस किया।

सत्यमूर्ति सी.आर. दास के भी निष्ठावान अनुयायी बन गए। सी.आर. दास काउंसिल प्रवेश कार्यक्रम के लिए दक्षिण के कांग्रेसजनों का समर्थन जुटाने के लिए सन् 1917 में मद्रास (चेन्नई) गए थे। इस संबंध में सत्यमूर्ति लिखते हैं, "सी.आर. दास इंडियन नेशनल कांग्रेस की एक नई विचारधारा के नेता के रूप में मद्रास आए...उन्होंने मद्रास के लोगों को तात्विक चिंतन और निराशा के उस दलदल से, जिसमें वे गिरे हुए थे या उन्हें गिराया गया था, निकालकर उन्हें राष्ट्रवाद और स्वराज के असली काम में प्रवृत्त किया जिससे इन लोगों को लगा जैसे वे राष्ट्रवाद और स्वराज के कार्य रूपी पर्वतों से आई स्वच्छ हवा में सांस ले रहे हों।"

कांग्रेस द्वारा आह्वान

भारत के सपूतो, तुम बेकार क्यों बैठे हो।
तुम्हें किस दैवीय सहयोगी की प्रतीक्षा है?
कमर कसो, उठो और काम करो,
राष्ट्र ही खुद का निर्माण करते हैं।

कर्म करने के लिए भारत के सपूतों का आह्वान किसी भारतीय नेता ने नहीं बल्कि एक अंगरेज ए.ओ.ह्यूम ने किया। ए.ओ.ह्यूम ने ही कांग्रेस के आंदोलन को गति प्रदान की।

ह्यूम ने सबसे पहले सन् 1883 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों को पत्र भेजकर उन्हें "भारत की जनता के मानसिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक पुनरुद्धार के लिए" एक संगठन बनाने का सुझाव दिया। इसी के अनुरूप सन् 1885 में मुंबई में कांग्रेस की स्थापना हुई।

सत्यमूर्ति की प्रगति करती पीढ़ी का पालन-पोषण इसी भावनापूर्ण

वातावरण में हुआ। उस पीढ़ी के लिए कांग्रेस के आह्वान की उपेक्षा कर पाना असंभव था। सन् 1908 में जब सत्यमूर्ति 21 वर्ष के ही थे और कॉलेज में थे तो उन्होंने चेन्नई में रास बिहारी घोष की अध्यक्षता में हुए कांग्रेस अधिवेशन में स्वयंसेवक के रूप में काम किया। उसी दौरान वक्ता के रूप में उनकी प्रतिभा सामने आई और उन्हें बाद के कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन मिला।

सन् 1914 में चेन्नई में अगला कांग्रेस अधिवेशन भूपेंद्रनाथ बसु की अध्यक्षता में हुआ तो सत्यमूर्ति एक उपसमिति के अध्यक्ष बनाए गए। बीच के वर्षों में वे लोकहित के विभिन्न मुद्दों का अध्ययन करते रहे और समाचारपत्रों में लेखों तथा पत्रों के माध्यम से उन पर अपने विचार व्यक्त करते रहे। उन्होंने एनी बेसेंट के होमरूल आंदोलन पर भी एक समीक्षात्मक लेख लिखा।

सत्यमूर्ति ने वक्ता एवं विवादी के रूप में अपना पहला भाषण मई सन् 1918 में कांचीपुरम में हुए प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन में दिया। सम्मेलन की अध्यक्षता सरोजिनी नायडू ने की थी। एनी बेसेंट ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें लोगों से रक्षा सेनाओं में भरती होने और प्रथम विश्वयुद्ध में अंगरेजों की सहायता करने का आह्वान किया गया था।

सत्यमूर्ति ने अपने ओजपूर्ण भाषण में प्रस्ताव का विरोध किया। यद्यपि उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली, लेकिन करांची के डेली गजट के संपादक के अनुसार, "उन्होंने श्रोताओं पर बहुत अच्छा प्रभाव डाला।"

स्वयं सरोजिनी नायडू ने कहा कि सत्यमूर्ति को संसदीय वक्तृत्व कला का आदर्श माना जा सकता है। यह मामूली प्रशंसा नहीं थी। एक ही वर्ष के भीतर अप्रैल 1919 में सत्यमूर्ति को इंग्लैंड जाने वाले कांग्रेस के उस प्रतिनिधिमंडल का सदस्य बनने के लिए भी आमंत्रित किया गया जो अंगरेज सरकार तथा वहां की जनता के सामने मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के बारे में अपना राष्ट्रवादी दृष्टिकोण रखने के लिए भेजा गया था। प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व पंडित मदन मोहन मालवीय ने किया।

समुद्र पार

प्रतिनिधि मंडल में शामिल होने के लिए मुंबई से तार आया तो उनके पास फैसला करने के लिए केवल एक दिन का समय था। सत्यमूर्ति ने कहा, "एक क्षण के लिए भी झिझके बिना मैंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।" कांग्रेस के आह्वान के प्रति जीवन भर उनका यही रवैया रहा।

यह सत्यमूर्ति की पहली विदेश यात्रा थी। इसमें उनके पिता की यह भविष्यवाणी सत्य हो गई कि उनका यश सागरों के पार भी फैलेगा। उन्हें कुछ सप्ताह बाद भारत लौटना था। परंतु उन्हें वहीं रुकने और कांग्रेस का प्रचार जारी रखने के लिए कहा गया ताकि भारत के बारे में अंगरेजों के मन में कोई गलतफहमी न रहे और दोनों देशों में बेहतर समझ-बूझ बन सके। इसके लिए सत्यमूर्ति ने कई जन-सभाओं में भाषण दिए और प्रमुख ब्रिटिश राजनेताओं के साथ मुलाकात की। अंततः इंग्लैंड में ये छह महीने तक रहे।

इंग्लैंड में लंबे समय तक ठहरने से कितना फायदा हुआ यह स्कॉटिश इंडिपेंडेंट पार्टी द्वारा उन्हें भेजे गए पत्र से जाहिर होता है। पत्र में लिखा था, "अनेक विशाल जनसभाओं में आपके द्वारा की गई वाक्पटु अपीलों का जोरदार प्रभाव पड़ा है और आपकी अनुपस्थिति में हम भारत की जनता को न्याय दिलाने के संघर्ष का काम जारी रखेंगे।"

इधर भारत लौटने पर सत्यमूर्ति का शानदार स्वागत हुआ। इसके बारे में उन्होंने स्वयं लिखा, "इससे मैंने वकालत का व्यवसाय फिर से न अपनाने और देश में कांग्रेस का प्रचार करने का निश्चय किया।" सत्यमूर्ति ने वास्तव में राजनीतिक काम को ही अपने जीवन का लक्ष्य माना और जीवन भर इसे निभाया। एक बार उन्होंने गांधीजी से भी कहा, "राजनीतिक काम के बिना मुझे जीवन बहुत नीरस लगता है।"

यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि परिवार के भरण पोषण के लिए 34 वर्षीय व्यक्ति के लिए आजीविका कमाना कितना जरूरी था। परंतु सत्यमूर्ति के सामने जीवन का लक्ष्य एकदम स्पष्ट था।

उनका कहना था," मैंने अपनी मातृभूमि की सेवा के लिए जानबूझकर कठोर तथा गरीबी से भरा सार्वजनिक कार्य का जीवन चुना है।"

जब महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया तो सत्यमूर्ति उसमें शामिल नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट किया कि देशभक्त होने के कारण वे कांग्रेस में बने रहेंगे किंतु उन्होंने गांधीजी के आह्वान पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की।

अपनी वकालत स्थगित करके उन्होंने एक सीमा तक महात्मा गांधी के अदालतों के बहिष्कार के आह्वान का ही पालन किया। परंतु उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय की सदस्यता नहीं छोड़ी, क्योंकि वे विश्वविद्यालय के कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाना चाहते थे और छात्रों के साथ संबंध बनाए रखना चाहते थे।

सत्यमूर्ति असेंबली में प्रवेश पर प्रतिबंध के भी खिलाफ थे, जिसकी कुछ नेता मांग कर रहे थे। उनका मानना था कि काउंसिल के अंदर रहकर असहयोग आंदोलन को और आगे बढ़ाया जा सकता है। उन्होंने कहा, "यह वास्तव में संघर्ष को दुश्मन के घर तक ले जाने और उसकी जमीन पर ही लड़ने के बराबर है।" अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने आयरिश नेताओं चार्ल्स स्टीवर्ट पर्नेल और ईमन दे वलेरा का उदाहरण दिया जो ऐसे ही मकसद से ब्रिटिश संसद के सदस्य बने थे।

सन् 1923 में सत्यमूर्ति मद्रास लेजिस्लेटिव काउंसिल के सदस्य बने। वे विश्वविद्यालय चुनाव क्षेत्र में चुनाव जीते। इसका उन्होंने यह कारण बताया–"केवल यही चुनाव क्षेत्र ऐसा है जिसमें प्रेसिडेंसी के आंध्र, तमिल, मलयाली, कन्नड़, हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी वर्गों के लोग रहते हैं...मैं पूरी प्रेसिडेंसी के शिक्षित वर्ग की आवाज उठाने के लिए अधिकृत होने की अद्वितीय स्थिति में रहूंगा।"

सत्यमूर्ति की चुनाव अपील में कहा गया "अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भ से ही मैं कांग्रेसी हूं और आगे भी रहूंगा। मैं मानता हूं कि इंडियन नेशनल कांग्रेस पिछले 40 वर्षों से भारत के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों तथा सर्वाधिक समर्पित व्यक्तियों के योगदान का परिणाम है और प्रत्येक देशभक्त का यह कर्तव्य है कि वह इस महान राष्ट्रीय

संस्था को सशक्त बनाए ताकि यह भारत के स्वराज के पोषित लक्ष्य को प्राप्त कर सके।"

यहां तक कि एनी बेसेंट ने जिनका उन्होंने विरोध किया, अपने अखबार *न्यू इंडिया* के परिशिष्ट के रूप में उनकी अपील प्रकाशित की। उन्होंने एक पत्र भी भेजा जिसमें विश्वविद्यालय चुनाव क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार के रूप में सत्यमूर्ति के नाम की सिफारिश की।

सत्यमूर्ति काफी मतों से विजयी हुए और उनकी जीत का अनेक राजनेताओं ने स्वागत किया। पहले दिन से ही उनकी आवाज बाकी सदस्यों से ऊपर रही और काउंसिल हाल में गूंजने लगी। तीन वर्ष के अपने कार्यकाल में उन्होंने सभी महत्वपूर्ण चर्चाओं में हिस्सा लिया और 7,000 से अधिक प्रश्न रखे तथा असंख्य पूरक प्रश्न पूछे।

उन दिनों जस्टिस पार्टी सत्ता में थी। चेन्नई के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डन ने जस्टिस पार्टी को कांग्रेस से भिड़ा दिया और पार्टी के नेता से मंत्रिमंडल का गठन करने को कहा। तदनुसार पनगल के राजा ने मंत्रिमंडल का गठन किया। परंतु नए मंत्रिमंडल की आलोचना हुई, क्योंकि उसका गठन जान-बूझकर सांप्रदायिक आधार पर हुआ था।

एक अन्य प्रसिद्ध वक्ता सी. रामलिंग रेड्डी ने सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव रखा। 27 नवंबर, 1923 को प्रस्ताव का समर्थन करते हुए सत्यमूर्ति ने सदन में अपना पहला भाषण दिया। भाषण बहुत ओजपूर्ण तथा विचारपूर्ण था जिसका तालियों से जोरदार स्वागत किया गया। परिषद के सह-सचिव आर.वी. कृष्ण अय्यर ने कहा, "सदन में इतना जोरदार और उद्वेलित कर देने वाला भाषण पहले कभी नहीं हुआ।

वाक्पटुता

सत्यमूर्ति केवल इसलिए महान नहीं थे कि उनमें वाक्पटुता थी बल्कि उनकी महानता उनके गहन अध्ययन और तथ्यपरक ज्ञान के साथ-साथ इस बात पर आधारित थी कि वे विषय को युक्तिसंगत ढंग

से प्रस्तुत करने में सक्षम थे। वे जोरदार तर्क पेश करते थे और अपने मत की पुष्टि के लिए उद्धरण दिया करते थे। उनका एक बहुत लंबा भाषण ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीयों के साथ होने वाले अपमान से संबंधित था। उसमें उन्होंने अपने तर्कों की पुष्टि के लिए बी.एस. श्रीनिवास शास्त्री, सी.एफ. एंड्रयूज, विंस्टन चर्चिल और शेक्सपियर के कथन, महाभारत के उद्धरण और संस्कृत के श्लोक प्रस्तुत किए।

उन्हें यह कथन बहुत प्रिय था 'यह बात नहीं है कि मुझे साम्राज्य से कम प्यार है, लेकिन मैं भारत से अधिक प्रेम करता हूं।"

सत्तारूढ़ दल के सदस्य सत्यमूर्ति से कांपते थे। बताया जाता है कि मंत्रियों तथा संसद सदस्यों को हर रोज काउंसिल में आने पर यही डर सताता रहता था कि सत्यमूर्ति के कटाक्ष वार न सहने पड़ें। एक बार एक प्रश्न पर मुख्यमंत्री की चुप्पी की ओर इशारा करते हुए सत्यमूर्ति ने कहा, "मैं यह पूछता हूं कि क्या इस सार्थक चुप्पी का राजनीतिक ईमानदारी और शिष्टाचार के किसी भी सामान्य मानदंड से सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है?"

क्रांतिकारी विचार

सरकारी सेवाओं में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के बारे में सत्यमूर्ति के विचार अत्यंत स्पष्ट थे। उनका कहना था, "आखिर हमें इसी देश में रहना है, भाई तथा मित्र बनकर रहना है...मैं चाहता हूं कि सभी समुदायों ब्राह्मण, गैर ब्राह्मण, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, दलित वर्गों को स्वराज प्राप्ति के लिए कड़े संघर्ष में एकजुट होकर भाग लेना चाहिए।

सत्यमूर्ति द्वारा संसद में किए गए अनेक साहसिक कार्यों में से एक था मद्रास पुलिस द्वारा सुब्रह्मण्यम भारती के गीतों की पुस्तक जब्त करने के संबंध में मद्रास कांउसिल में 8 अक्टूबर, 1927 को स्थगन प्रस्ताव लाना।

मद्रास हाईकोर्ट में अर्जी दाखिल किए जाने के कारण मामला न्यायालय के विचाराधीन था। अतः इस मामले पर स्थगन प्रस्ताव

विचार के लिए मंजूर कराने के लिए भी उन्हें लंबा संघर्ष करना पड़ा।

सत्यमूर्ति ने कहा कि सुब्रह्मण्यम भारती यदि किसी स्वतंत्र देश में जन्मे होते तो उन्हें राष्ट्रकवि के रूप में सम्मानित किया जाता। परंतु भारत जैसे गुलाम देश में उन्हें निर्वासित जीवन बिताना पड़ा जिससे तबाह हो गए। उन्होंने कहा कि जब तक तमिल भाषा रहेगी और एक भी तमिल व्यक्ति जीवित रहेगा, भारती के गीत तमिल प्रजाति की अमूल्य धरोहर बने रहेंगे।

सेंट्रल असेंबली में

सन् 1934 में केंद्रीय विधानसभा के लिए चुनाव हुए। कांग्रेस ने पहली बार चुनावों में भाग लिया। मद्रास शहर चुनाव क्षेत्र से सत्यमूर्ति को उम्मीदवार बनाया गया। उनका मुकाबला प्रखर वक्ता और जस्टिस पार्टी के उम्मीदवार ए. रामास्वामी मुदलियार से था। दोनों की सभाओं में बड़ी संख्या में लोग जमा होते थे। परंतु दोनों का अभियान काफी सभ्य ढंग से चला। ऐसा कहा जाता है कि कई बार अभियान के दौरान दोनों उम्मीदवारों की मुलाकात हो जाती तो वे एक-दूसरे से हाथ मिलाते थे। सत्यमूर्ति के कुछ प्रशंसकों ने यह देखा तो एतराज किया। परंतु सत्यमूर्ति ने इस मामले को मजाक में उड़ाते हुए कहा, "असल में मैं उनकी नब्ज देख रहा था।"

एक बार तो दोनों उम्मीदवारों ने एंग्लो-इंडियन एसोसिएशन द्वारा उपलब्ध कराए गए एक ही मंच से अपने विचार व्यक्त किए। एसोसिएशन के अध्यक्ष ई.एच.एम. ब्रोअर ने उन वक्ताओं का परिचय कराते हुए कहा कि दोनों ही प्रतिष्ठित सज्जन हैं और अनेक विषयों पर इनके विचार भिन्न हैं। उन्होंने आमने-सामने आकर बहस करने के लिए दिखाए साहस और हिम्मत के लिए दोनों की सराहना की।

सत्यमूर्ति 5 हजार से अधिक वोटों के अंतर से चुनाव जीत गए। जब वे रिपन बिल्डिंग से बाहर निकले तो बाहर खड़ी भीड़ ने हर्ष ध्वनि से उनका स्वागत किया। अपने समर्थकों का आभार व्यक्त करते हुए

उन्होंने कहा, "आज की शाम आप जिस सफलता पर इस समय खुशी मना रहे हैं वह मेरी नहीं है। यह सफलता कांग्रेस, महात्मा गांधी और भारत माता की है।"

एक भूतपूर्व आई.सी.एस. अधिकारी हिल्टन ब्राउन ने कहा, "सत्यमूर्ति के चले जाने के बाद मद्रास कांउसिल की रौनक कम हो गई।" परंतु सत्यमूर्ति को सेंट्रल असेंबली के रूप में अपनी प्रतिभा के इस्तेमाल का और ऊंचा मंच मिल गया। वे ब्रिटिश शासकों की आंख की किरकिरी साबित हुए। इस प्रकार सत्यमूर्ति के शानदार संसदीय जीवन का अंतिम तथा अत्यधिक स्मरणीय चरण प्रारंभ हुआ।

अपने एक लेख में स्वयं सत्यमूर्ति ने सेंट्रल असेंबली के दृश्य का वर्णन इस प्रकार कियाः "पोशाकी अभिव्यंजना का चाहे वैसे महत्व न हो किंतु असेंबली में प्रायः हमेशा ही करीब 44 सदस्यों को गांधी टोपी पहने हुए देखना आश्चर्यजनक लगता था, वही गांधी टोपी जिसे पहनने पर लोगों पर मुकदमा चलाया जाता था और उन्हें सजा सुनाई जाती थी, यहां तक कि कई बार पीटा भी जाता था। विशेषकर वाइसराय के लिए यह अच्छा था कि जब वे हमें संबोधित करने उठे तो उन्हें 44 गांधी टोपियां दिखाई पड़ीं।"

सेंट्रल असेंबली में भूलाभाई देसाई कांग्रेस पार्टी के नेता चुने गए। सत्यमूर्ति को पहले सचिव चुना गया और बाद में उप-नेता। असेंबली अब तक मात्र कठपुतली ही थी। किंतु सत्यमूर्ति द्वारा असेंबली की कार्यवाही पर अपना प्रभुत्व कायम करने के बाद जैसे रणभूमि बन गई। अनुभवी पत्रकार और भारत सरकार के तत्कालीन सूचना अधिकारी ए.एस. आयंगार ने सत्यमूर्ति के प्रश्नों को नौकरशाही के लिए निराशा और सरकारी सदस्यों के लिए आतंक बताया था।

बुद्धिकौशल की होड़

सत्यमूर्ति द्वारा चलाया गया पहला तीर था महात्मा गांधी की गतिविधियों से संबंधित गोपनीय परिपत्र के बारे में स्थगन प्रस्ताव।

इसमें संदेह व्यक्त किया गया था कि यह सविनय अवज्ञा आंदोलन का ही एक रूप है। सत्यमूर्ति ने परिपत्र की घटिया अंगरेजी और खराब शैली की खिल्ली उड़ाई। सरकारी पक्ष के सदस्य हतप्रभ रह गए।

सत्यमूर्ति ने एक बार 'दमनकारी कानूनों' को रद्द करने से संबंधित विधेयक पर लगातार आठ घंटे बोलकर सेंट्रल असेंबली में इतिहास रचा। चर्चा के दौरान विधि सदस्य सर एन.एन. सरकार ने कहा कि उन्हें संदेह है कि सत्यमूर्ति वोट बटोरने के लिए यह तमाशा कर रहे हैं। सत्यमूर्ति ने तपाक से जवाब दिया, "लोकतंत्र में हम वोट पकड़ने में विश्वास रखते हैं गवर्नरों या वाइसरायों की पूंछ पकड़ने में नहीं।"

दि हिंदू अखबार में छपे अपने एक लेख में बी. शिव राव ने कहा, "भारत में संसदीय जीवन के 36 साल के अपने अनुभव में मुझे और कोई नेता याद नहीं आता जिसने 30 मिनट में अपने पक्ष को इतने विश्वसनीय और जोरदार ढंग से रखा हो जिसमें न तो किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छोड़ा गया और न ही सुबोधता व अभिव्यक्ति की ओजस्विता की उपेक्षा की गई।"

एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पर सत्यमूर्ति के भाषणों की सराहना करते हुए एक ब्रिटिश अधिकारी ने कहा, "इस व्यक्ति को हाउस ऑफ कॉमन्स में होना चाहिए था।"

संविधान संशोधन प्रस्तावों का ज़िक करते हुए सेक्रेटरी आफ स्टेट ने एक बार ब्रिटिश संसद में कहा, "भले ही कुत्ते भौंकते रहें, ब्रिटिश काफिला आगे बढ़ता रहेगा।" असेंबली में सत्यमूर्ति ने इसका उत्तर दिया, ..."सदन के इस पक्ष के हम लोग इस बात के लिए कृतसंकल्प हैं कि इंडियन नेशनल कांग्रेस का काफिला अपनी मंजिल पर पूरी तरह पहुंच सके फिर चाहे कुत्ते अंगरेज या दूसरे जो भी हो, भौंकते रहें।"

उदारता

सन् 1937 में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 के तहत कांग्रेस देश भर में प्रांतीय असेंबलियों के चुनाव लड़ने की तैयारी कर रही

थी। सत्यमूर्ति ने अब तक वैधानिक कार्यक्रम के लिए काम किया था। वे सेंट्रल असेंबली छोड़कर वापस चेन्नई जाकर नई लेजिस्लेटिव कांउसिल का नेतृत्व संभालना चाहते थे। उनके लिए विश्वविद्यालयीन स्नातक चुनावी क्षेत्र से चुनाव जीतना बहुत आसान होता। संसदीय समिति ने भी उनकी उम्मीदवारी को अपनी मंजूरी दे दी।

परंतु परिस्थितियों ने दूसरा ही मोड़ ले लिया। सी. राजगोपालाचारी, जो राजनीति छोड़ चुके थे फिर राजनीति में लौट आए। इस स्थिति के पीछे बहुत दिलचस्प किस्सा है।

उस समय नेता पद को लेकर यह सवाल उठा कि ऐसा नेता कौन हो सकता था जिसे सभी लोगों का आदर प्राप्त हो। सवाल केवल असेंबली में पार्टी का नेतृत्व करने का होता तो सत्यमूर्ति सहज रूप से स्वीकार्य थे। परंतु उसके साथ भाषाई, क्षेत्रीय तथा अन्य सवाल भी जुड़े थे। महत्व इस बात का था कि कांग्रेस की एकता बनाए रखने के लिए पार्टी का नेता सर्वसम्मति से चुना जाए।

इसलिए नेकनीयत वाले साथी किसी नेता की तलाश में थे। उनके विचार में राजाजी पद के लिए आदर्श व्यक्ति थे। *दि हिंदू* अखबार के प्रबंध संपादक के. श्रीनिवासन ने इस बारे में राजाजी से बात की। राजाजी किसी सामान्य चुनाव क्षेत्र में जाकर प्रचार कार्य करने को तैयार नहीं थे। केवल यूनिवर्सिटी चुनाव क्षेत्र ही ऐसा था जहां से वे लगभग सर्वसम्मति से चुने जा सकते थे। राजाजी ने कहा कि यदि सत्यमूर्ति अपना चुनाव क्षेत्र उनके लिए छोड़ने को तैयार हो तो वे चुनाव लड़ेगें।

जब श्रीनिवासन ने सत्यमूर्ति से बात की तो वे हैरान रह गए। परंतु पार्टी के नेतृत्व के लिए जब उन्हें राजाजी के नाम की जानकारी दी गई तो उन्होंने स्वेच्छा से अपना चुनाव क्षेत्र छोड़ दिया। यह सत्यमूर्ति के जीवन में श्रेष्ठ अवसर था जब पार्टी के हित में उन्होंने व्यक्तिगत हितों की तिलांजलि दे दी! गांधीजी ने कहा, "तुम चमत्कारी कार्यकर्ता हो; तुमने वह कर दिखाया है जो हम नहीं कर सके। मुझे आश्चर्य है कि तुमने सीट कैसे छोड़ दी।"

परंतु जब राजाजी ने सरकार बनाई तो आशा के प्रतिकूल उन्होंने न तो सत्यमूर्ति को मंत्रिमंडल में लिया और न ही इसके गठन के लिए उनसे सलाह मशवरा किया।

सत्यमूर्ति नाराज नहीं हुए। वे केंद्रीय असेंबली में अपने संसदीय कार्य में व्यस्त हो गए। उन्हें मद्रास विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर के पद की पेशकश की गई, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

जैसा कि ए.एस. आयंगार ने लिखा, "सत्यमूर्ति अपने हित को भुला देने के इस अद्वितीय कार्य से जितने ऊंचे उठे उतने पहले कभी नहीं उठ पाए। उन्होंने अपने उन निंदकों और आलोचकों को झूठा सिद्ध कर दिया जो सोचते थे कि सत्यमूर्ति पदलोलुप है। वे कांग्रेस या नौकरशाही के अधीन" किसी पद पर एक मिनट के लिए भी नहीं रहे, हालांकि अन्य कई लोगों ने पद लिए और उनका फायदा उठाया।"

सार्वजनिक जीवन में अति व्यस्त रहने के कारण सत्यमूर्ति के पास अपने स्वास्थ्य या अपने परिवार–अपनी पत्नी तथा बेटी की देखभाल के लिए समय ही नहीं होता था। गांधीजी के व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन के सिलसिले में 13 दिसंबर 1940 को उन्हें 9 महीने की कैद की सजा हुई। स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण उन्हें वेल्लोर जेल से मद्रास जनरल हॉस्पिटल भेजा गया। सत्यमूर्ति के परिवार को उनकी देखरेख की इजाजत मिल गई। घर वाले दिन में दो बार अस्पताल जाते थे और उनकी देखभाल में मदद करते थे।

सत्यमूर्ति को 23 अगस्त 1941 को रिहा किया गया। परंतु उनका स्वास्थ्य असंतोषजनक ही बना रहा। डॉ. बी.सी. राय ने उनकी जांच की और उनके दिल की कमजोर हालत को देखते हुए उन्हें लंबे विश्राम की सलाह दी। परंतु सत्यमूर्ति का विचार था कि दवाओं की अपेक्षा वे अपने सार्वजनिक जीवन की वजह से ही सक्रिय रहे हैं। अतः वे पहले की ही भांति सक्रिय बने रहे।

वे बीमार चल रहे थे तभी उन्हें अपनी बेटी के लिए अच्छा वर मिल गया। उन्होंने विवाह की तारीख भी तय कर दी। उन्हें लगा कि उनका अंत करीब है तो भी उन्होंने अपने साथियों से कहा कि

विवाह की तारीख आगे न बढाएं और न ही रद्द करें। विवाह निर्धारित तारीख को ही हुआ।

लक्ष्मी के नाम पत्र

सन् 1941 में मद्रास जनरल हॉस्पिटल में इलाज कराते हुए सत्यमूर्ति को लगा कि उन्होंने अपने बेटी की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। अपने घर में वे अच्छे पति और अपनी इकलौती बेटी के लिए स्नेही पिता थे। कहा जाता है कि जब वे काम पर जाते थे तो हमेशा अच्छी पोशाक पहनकर निकलते थे। घर से निकलने से पहले वे प्रायः लक्ष्मी से पूछा करते थे कि वे कैसे लग रहे हैं। हालांकि वह बहुत छोटी थी फिर भी वे बहुत-सी बातों में उससे सलाह करते थे और उसकी राय मांगते थे।

सन् 1941 में लक्ष्मी 16 वर्ष पूरे कर रही थी। पिछले वर्षों में हुई उपेक्षा तथा पिता और पुत्री में संपर्क की कमी की भरपाई करने के इरादे से सत्यमूर्ति अस्पताल से प्रतिदिन उसे एक पत्र लिखा करते थे। कुल मिलाकर इन 68 पत्रों में हित की सलाह दी गई थी। इन पत्रों को लिखने का उद्देश्य लक्ष्मी या यों कहें सभी बच्चों को शिक्षा और प्रेरणा देना था। ये सभी पत्र *एट द थ्रेशहोल्ड ऑफ लाइफ* शीर्षक से एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए हैं।

इन पत्रों में कला, सार्वजनिक भाषण, महिला शिक्षा आदि अनेक विषयों का समावेश हुआ है। एक पत्र में सत्यमूर्ति ने लिखा कि सभी लड़कियों को साहित्य की उच्चतम शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। उन्होंने लक्ष्मी को हिन्दी, तमिल, संस्कृत और अंगरेजी सीखने की सलाह दी। "मैं चाहता हूं कि तुम इन सभी या कम से कम कुछ भाषाओं तथा उनके साहित्य की विदुषी बनो।" उन्होंने लिखा, "मैं यह भी चाहता हूं कि तुम अंतरराष्ट्रीय मामलों को समझने के लिए इतिहास और भूगोल का अध्ययन करो। तुम्हें सामान्य-विज्ञान का इतना ज्ञान होना चाहिए कि तुम अपने आस-पास की वस्तुओं को सही ढंग से जान सको। तुम्हें

अपने देश के इतिहास भूगोल और राजनीति की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। तुम्हें संगीत या चित्रकला जैसी ललितकलाओं में से कम से कम एक का अवश्य ज्ञान होना चाहिए..!!

एक अन्य पत्र में उन्होंने संस्कृत की एक कविता को उद्धृत किया जिसका अर्थ है, "काव्य, संगीत और कला से रहित मनुष्य पूंछ व सींग विहीन पशु के समान है।" चित्रकला और मूर्तिकला की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा, "इनसे दिव्य सत्ता की हमारी ईश्वरीय अवधारणा साकार होती है।"

भाषण-कला में विलक्षणता के कारण सत्यमूर्ति ने अपने निजी अनुभवों का उदाहरण देते हुए कई महत्वपूर्ण बिंदु बताए तथा दिशा निर्देश दिए। उन्होंने कहा कि तुम्हें श्रोताओं की नब्ज पकड़नी चाहिए —श्रोताओं में उकताहट पैदा होने से काफी पहले ही बोलना बंद कर देना चाहिए।

"सार्वजनिक भाषण देना हो तो अपना भाषण पहले से तैयार करो। कभी अचानक बोलना पड़े तो अलग बात है अन्यथा मैं हमेशा अपना भाषण पहले से तैयार करता हूं। जनता तुम्हारा भाषण सुनकर तुम्हें गौरव प्रदान करती है तो तुम्हें भी उनका सम्मान करते हुए अपना भाषण बड़ी सावधानी से तैयार करना चाहिए।" उन्होंने भाषण देते समय आवाज के सही उतार-चढ़ाव की महत्ता पर अधिक जोर दिया।

8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस ने मुंबई में प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया। इसके तुरंत बाद गांधीजी सहित सभी नेता गिरफ्तार कर लिए गए। सत्यमूर्ति 10 अगस्त को मुंबई से चेन्नई रवाना हुए। उनके रवाना होने से पहले गांधीजी के चिकित्सक डॉक्टर गिल्डर ने उनके स्वास्थ्य की जांच की और उन्हें काम करने की दृष्टि से अस्वस्थ बतलाया।

11 अगस्त, 1942 को सत्यमूर्ति को अर्कोणम में गिरफ्तार करके वेल्लोर जेल ले जाया गया। वहां से उन्हें अमरावती (अब महाराष्ट्र में) जेल भेज दिया गया। उनकी तबियत बिगड़ गई तो उन्हें वापस चेन्नई भेजा गया और 10 जनवरी, 1943 को जनरल हॉस्पिटल में दाखिल

किया गया। किंचित सुधार होने के बावजूद उनके स्वास्थ्य में कई जटिलताएं उत्पन्न हो गईं। 28 मार्च, 1943 को सत्यमूर्ति का स्वर्गवास हो गया।

राजाजी ने कहा, "एक अविराम जीवन को विराम मिल गया।"

विविध रुचियां

यद्यपि सत्यमूर्ति का अधिकांश समय और शक्ति राजनीति में लगी तथापि उनकी रूचि विविध विषयों में थी। उन्होंने चित्रकला से शिक्षा तक के अनेक क्षेत्रों में विशिष्टता हासिल की। उन्होंने जो भी काम हाथ में लिया उसे कुशलता के साथ निभाया।

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है, शिक्षा के क्षेत्र में वे अनेक वर्ष तक मद्रास विश्वविद्यालय की सीनेट के निर्वाचित सदस्य रहे। अन्नामलाई विश्वविद्यालय की स्थापना में भी उनकी अग्रणी भूमिका थी और उसके संचालन में भी वे सकिय रूचि लेते रहे।

कलाओं, विशेषकर संगीत के प्रेमी होने के नाते उन्होंने संगीतकारों को प्रोत्साहन और संरक्षण दिया। वे संगीत अकादमी, चेन्नई के संस्थापक सदस्यों में से थे। वे अपने घर पर नियमित रूप से वर्ष में दो-तीन बार प्रमुख संगीतकारों के संगीत कार्यक्रम आयोजित किया करते थे।

सत्यमूर्ति को नाटकों का भी शौक था। उन्होंने चेन्नई के सर्वाधिक प्राचीन सांस्कृतिक संगठन सुगुण विलास सभा द्वारा मंचित अनेक नाटकों में अभिनय भी किया।

भाषाओं में उन्हें सबसे अधिक प्रिय संस्कृत भाषा थी। बचपन में अपने पिता की शिक्षा के कारण वे संस्कृत बोल भी लेते थे। चेन्नई में वे संस्कृत अकादमी के कर्णधारों में से एक बने। संस्कृत के बाद तमिल उन्हें प्रिय थी। वे बहुत सरल सीधी-सादी भाषा का इस्तेमाल करते थे। अंगरेजी पर भी उन्हें समान रूप से अधिकार प्राप्त था। उन्होंने स्कूल स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाने तथा

अंगरेजी को वैकल्पिक विषय के रूप में रखने का समर्थन किया।

नागरिक एवं नगरपालिका से संबंधित मामलों में भी सत्यमूर्ति गहरी रूचि लेते थे। सन् 1939 में वे चेन्नई के मेयर चुने गए। उन्होंने नगर को स्वच्छ एवं हरा-भरा बनाए रखने में पर्याप्त रूचि ली।

राजनीति के अलावा अनेक अन्य सार्वजनिक मामलों में भी उनकी दिलचस्पी विविधतापूर्ण थी। उन्होंने किसानों, जमींदारों, अराजपत्रित अधिकारियों, मजदूरों तथा छात्रों के हितों के लिए भी काम किया।

सत्यमूर्ति अत्यंत धार्मिक व्यक्ति थे। वे बहुत सवेरे उठकर स्नान करने के बाद ही काम शुरू करते थे। वे प्रतिदिन पूजा करते थे और काम पर जाने से पहले रामायण के कुछ श्लोकों का पाठ करते थे।

वे कांची तथा श्रृंगेरी के जगद्गुरू शंकराचार्यों के परम भक्त थे। वे अक्सर उनके दर्शन के लिए जाया करते थे और उनके साथ विभिन्न समस्याओं पर विचार-विमर्श करते थे।

हिंदू धर्म के प्रति अपनी आस्था और सिद्धांत का सार व्यक्त करते हुए वे कहते थे–"सत्य कर्म करो, अच्छे बनो।" उसी का उन्होंने अपने जीवन में अनुसरण भी किया। उनका कहना था–"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हम अच्छा जीवन जिएं, अपनी इंद्रियों पर संयम रखें, दूसरों की भलाई करें और उन्हें हानि न पहुंचाएं तो देर सवेर हमें मोक्ष ही प्राप्त होगा।"

“यह देश आज से 20, 30 या 40 साल बाद जब स्वतंत्र हो जाएगा और हमारे बच्चे और बच्चों के बच्चे उन दिनों की चर्चा करेंगे जब हम इंग्लैंड के गुलाम थे तो वे अपने आपसे पूछेंगे कि उनके बाप-दादा ने उन दिनों क्या किया था? भगवान के लिए उनके वास्ते ऐसी विरासत छोड़कर जाओ कि वे यह कह सकें ‘हमारे बाप-दादा ने भारत की आजादी के लिए अहिंसक संघर्ष किया; उनके लिए ऐसी घिनौनी विरासत छोड़कर मत जाना कि वे कहें कि हमारे बाप-दादा ने इस घृणित (क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट) बिल के पक्ष में मत दिया।”

एस. सत्यमूर्ति